(iii) मार्ले-मिंटो सुधार (भारतीय परिषद अधिनियम 1909)

(क) विचार-विमर्श : 1892 के सुधार भारतीय राजनीतिक क्षेत्रों में अधिक दिन लोकप्रिय नहीं रह सके। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते ही सांविधानिक परिवर्तन की माँग की

Scanned by CamScanner

जाने लगी। मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918) के अनुसार 1909 के सुधारों के 'आंतरिक' और 'बाह्य' — दोनों ही कारण थे। आंतरिक कारणों में, विधान परिषदों के अंदर और बाहर राजनीतिक वर्ग द्वारा और सुधारों की माँग, लॉर्ड कर्जन द्वारा 1904 में अत्यंत विवादास्पद विश्वविद्यालय अधिनियम (1904) को पारित किया जाना और सबसे अधिक विस्फोटक कार्यवाही — बंगाल का विभाजन था। बाह्य कारणों में रिपोर्ट के अनुसार 1904 में जापान द्वारा रूस को पराजित किया जाना तथा 1905 में इंग्लैंड में लिबरल पार्टी का सत्ता में आना था।

लॉर्ड कर्जन के त्याग-पत्र के पश्चात नवंबर 1905 में लॉर्ड मिंटो की नियुक्ति हुई। नए गवर्नर जनरल की राजनीतिक दृष्टि निश्चित रूप से अनुदार थी। दिसंबर 1905 में भारत मंत्री के पद लॉर्ड मॉर्ले की नियुक्ति हुई। वयोवृद्ध लॉर्ड मॉर्ले (मंत्री पद स्वीकार करते समय उसकी आयु 67 की थी) की प्रसिद्धि एक उदारवादी राजनीतिज्ञ की थी, जो स्वयं अपने को बर्क और मिल के राजनीतिक सिद्धांतों का उपासक मानता था। इसके अतिरिक्त वह ग्लैडस्टन की आत्मकथा का भी रचयिता था। मॉर्ले के सत्ता में आते ही कांग्रेस के नरम पंथियों के हृदय में आशा की एक लहर दौड़ पड़ी। इनके प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले मार्ले के सत्ता में आने के कुछ ही दिनों पूर्व इंग्लैंड में थे और उन्होंने भावी भारत मंत्री से एक भेंट में विधान परिषदों और कार्यकारिणी में समुचित सुधारों की माँग की। दिसंबर 1905 में बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए गोखले ने इंग्लैंड की लिबरल सरकार की ईमानदारी और विशेषतः लॉर्ड मॉर्ले की उदार राजनीतिक विचारधाराओं में अपनी आस्था दुहराई। इसी विश्वास के आधार पर कांग्रेस ने 1905 में "आवश्यक सतर्कतापूर्ण" तरीकों से स्वशासन प्राप्त करने के उद्देश्य की घोषणा की। बनारस अधिवेशन के बाद गोखले फिर इंग्लैंड गए और मई-जून 1906 में उन्होंने मार्ले से पाँच-छह भेंटें कीं। इन भेंटों के परिणामस्वरूप मॉर्ले ने अपने पत्रों में भारत के वाइसराय मिंटो से तुरंत सुधारों को प्रारंभ करने का आग्रह किया। मॉर्ले का विचार था कि यदि ब्रिटिश संसदीय संस्थाओं की स्थापना भारत में न भी की जा सके — तो कम-से-कम उनकी 'आत्मा' तो हस्तांतरित की जा सकती है। अपने इन्हीं विचारों और आशाओं के अनुरूप मॉर्ले ने ब्रिटिश संसद में 20 जुलाई 1906 को यह घोषणा की कि भारत में सांविधानिक सुधारों पर विचार-विमर्श प्रारंभ हो गया है। गोखले ने स्वयं दर्शक दीर्घा से इस भाषण को सुना था और स्वदेश लिखे हुए अपने एक पत्र में उन्होंने यह कहा कि लॉर्ड रिपन के भारत से जाने के बाद किसी उत्तरदायित्व के पद पर भारत का इतना परम मित्र कोई नियुक्त नहीं हुआ।

जहाँ पर लॉर्ड मॉर्ले (ब्रिटेन की) "साम्राज्यवादी सरकार और भारत के उदारवादी राष्ट्रवादियों के बीच एक व्यावहारिक संधि" की नींव रखने की कल्पना कर रहा था, वहीं भारत में वाइसराय मिंटो नरमपंथी कांग्रेस के विरुद्ध एक संभावित गठजोड़ की योजना बना रहा था। उसके अनुसार नरम पंथी कांग्रेस में भी कुछ तत्व नितांत राजद्रोही था और किसी भी सांविधानिक योजना को स्वीकार करने से पूर्व कांग्रेस की विचारधारा के अतिरिक्त समाज के रूढ़िवादी वर्गों के हितों का ध्यान रखना अनिवार्य था। इस तथाकथित रूढ़िवादी वर्गों में भारतीय समाज का सामंती वर्ग, उच्च भूमिपतियों का वर्ग और देशी रजवाड़ों का वर्ग था। उसके अनुसार इनके विचारों की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। मिंटो के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त एक सूक्ष्म अल्पसंख्यक वर्ग की अपेक्षा समाज का अनुदार वर्ग समाज में स्थायित्व की स्थापना में अधिक महत्वपूर्ण योगदान करता था और सही अर्थों में वही उसका सहज नेतृत्व करता था।

Scanned by CamScanner

यह प्रारंभ से ही स्पष्ट था कि मॉर्ले और मिंटो की विचारधाराओं में आधारभूत अंतर था। मिंटो कांग्रेस को ब्रिटिश राज का शत्रु मानता था और प्रत्येक उन शक्तियों को प्रोत्साहित करने को उत्सुक था, जो उसके प्रभाव को कम करने में सहायक हो सकें। इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर मिंटो ने मुसलिम समुदाय के उन प्रयासों का स्वागत किया, जिसके द्वारा वे सुधारों की प्रक्रिया में अपने हितों की सुरक्षा करना चाहते थे। 1875 में सर सैयद अहमद खाँ द्वारा मुहम्मडन ऐंग्लो-ओरियंटल कॉलेज की अलीगढ़ में स्थापना के बाद पश्चिमी शिक्षा प्राप्त मुसलमानों का एक वर्ग अपने को कांग्रेस आंदोलन से क्रमशः दूर समझने लगा था, क्योंकि सर सैयद के अनुसार ब्रिटिश राज के प्रति राजभक्ति ही मुसलमानों के भविष्य की सुरक्षा है। इसलिए ज्यों ही लॉर्ड मॉर्ले ने ब्रिटिश संसद में सुधारों की संभावना की घोषणा की, मुसलिम नेताओं को अपने समुदाय के भविष्य की चिंता ने ग्रस्त कर लिया। उनकी इस चिंता को और भी तीव्र करने का कार्य अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसिपल डब्लू-ए-आर्कबोल्ड ने किया। आर्कबोल्ड की भूमिका ब्रिटिश सरकार के शीर्षस्थ अधिकारियों और मुसलिम समाज के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के बीच एक सेतु स्थापित करने की थी। इसलिए जब कॉलेज के सेक्रेटरी मोहसिन उल-मुल्क ने 4 अगस्त 1906 को लिखे अपने पत्र में मॉर्ले द्वारा संसद में सांविधानिक सुधारों पर दिए गए वक्तव्य को राष्ट्रीय कांग्रेस की एक बड़ी सफलता बताया तो आर्कबोल्ड ने इस व्याख्या को सहर्ष स्वीकार किया। यह पत्र मिंटो के पास 8 अगस्त को पहुँच गया और उसी दिन उसकी सूचना मॉर्ले के पास पहुँचा दी गई। मोहसिन-उल-मुल्क ने वायसराय के पास एक शिष्ट मंडल भेजने और उसे मुसलिम समस्या पर एक ज्ञापन देने का निर्णय किया। 1 अक्टूबर 1906 को शिमला में आगा खाँ के नेतृत्व में 35 सदस्यीय एक शिष्ट मंडल मिंटो से मिला। अपने ऐतिहासिक उत्तर में मिंटो ने शिष्ट मंडल को यह आश्वासन दिया कि भविष्य के किसी भी राजनीतिक और सांविधानिक परिवर्तन में मुसलमानों की इस देश के इतिहास और राजनीति में अहम् भूमिका का पूरा ध्यान रखा जाएगा।

इस बीच अगस्त 1906 में मिंटो ने सुधारों के संबंध में विचार करने के लिए अपनी कार्यकारिणी की एक समिति, ए० टी० अरंडल के अधीन नियुक्त की। इस समिति का यह स्पष्ट निर्देश था कि किसी भी सुधार की रूपरेखा में सामंतों, जमींदारों, व्यापारियों, यूरोपीयन व्यावसायिक हितों की पूरी सुरक्षा की जाए। अरंडल समिति की संस्तुति पर भारत सरकार ने मार्च 1907 में एक सरकारी पत्र (डिसपैच) भारत-मंत्री के पास भेजा। भारत की विभिन्न विधान परिषदों के विस्तार के साथ-साथ इस पत्र में सामंतों की एक समिति (कौंसिल ऑफ नोटेबुल्स) की भी स्थापना की व्यवस्था थी। मॉर्ले को भारत सरकार के इन अत्यंत साधारण प्रस्तावों से बहुत निराशा हुई और उसने मिंटो से अधिक विस्तृत प्रस्तावों को भेजने का आग्रह किया। अंततः भारत सरकार द्वारा, प्रांतीय सरकारों के साथ विस्तृत विचार-विमर्श के बाद, अक्टूबर 1908 में भारत-मंत्री को सुधारों के प्रस्ताव भेजे गए। सुधारों के विचार-विमर्श में बहुत विलंब हो चुका था। मॉर्ले दिसंबर के अंतिम सप्ताहों के पूर्व ही सुधारों की घोषणा करना चाहते थे ताकि जब कांग्रेस का अधिवेशन हो तो नरमपंथियों की राजनीतिक साख बनी रहे। भारत सरकार के प्रस्तावों के उत्तर में लिखे अपने 27 नवंबर 1908 के पत्र में मॉर्ले ने लगभग सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया। लेकिन मिंटो द्वारा मुसलमानों को पृथक चुनाव प्रणाली की

Scanned by CamScanner

सुविधा देने के प्रति उसकी गंभीर आशंकाएँ थीं। यह एक निर्विवाद सत्य था कि 1892 के भारतीय विधान परिषद अधिनियम के लागू होने के बाद से विभिन्न परिषदों में मुसलमानों को अपनी जनसंख्या के अनुपात में नगण्य प्रतिनिधित्व मिला था। गवर्नर जनरल की विधान परिषद में 1892 से 1906 के बीच मुसलमानों को केवल 12 प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला था जबकि जनसंख्या में उनका अनुपात 23 प्रतिशत था। मद्रास और संयुक्त प्रांत में इस काल में उन्हें कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका था और बंगाल में जहाँ की जनसंख्या के वे आधे से भी अधिक भाग थे, वहाँ की चुनी गई विधान परिषदों में उनका हिस्सा केवल 5.7 प्रतिशत था। इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के लिए मिंटो ने मुसलमानों के प्रतिनिधि मंडल को उनके प्रतिनिधियों को चुनने के लिए केवल उन्हीं के समुदाय के सदस्यों से चुनने की बात कही थी। यही आश्वासन पृथक चुनाव प्रणाली का आधार बना था। इसके अतिरिक्त मुसलमान सामान्य चुनाव मंडलों में भी अपना मत दे सकते थे।

लॉर्ड मॉर्ले ने दो पृथक मतदाता सूची बनाए जाने की नीति की आलोचना की और इस प्रणाली को राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बाधक बताया। इसके स्थान पर उसने आनुपातिक चुनाव मंडलों के प्रस्ताव का विकल्प दिया, जिससे प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में प्रारंभिक स्तर पर मिश्रित चुनाव मंडलों में दोनों समुदायों के उम्मीदवारों को मत मिलता, परंतु चुनाव परिणाम की घोषणा के समय जनसंख्या में अनुपात के अनुसार दोनों वर्गों के उम्मीदवारों को चुना हुआ माना जाता। लॉर्ड मिंटो ने मॉर्ले के इन प्रस्तावों की कड़ी आलोचना की। उसका पक्ष यह था कि 1906 में शिमला में मुसलिम प्रतिनिधि मंडल को दिया हुआ आश्वासन सरकार की ओर से दिया हुआ वचन था और उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। 1908 के अधिवेशन में मुसलिम लीग ने मॉर्ले की भर्त्सना की और लंदन में उसकी शाखा ने इन प्रस्तावों के विरुद्ध प्रचार किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि मॉर्ले का साहस जाता रहा और उसने प्रस्तावों का परित्याग कर दिया।

(ख) 1909 के अधिनियम की विशिष्टताएँ : 1909 के सुधारों के निर्माताओं का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत की परिस्थितियों में भौगोलिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का लागू किया जाना असंभव था। एक ओर भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत था और दूसरी ओर जनसंख्या धर्मों और जातियों में विभाजित थी। इन्हीं कारणों से विभिन्न हितों, वर्गों, धार्मिक समुदायों और व्यापारिक वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। इसलिए जब 15 नवंबर 1909 को भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत चुनाव नियमों को प्रकाशित किया गया तो निम्नांकित चुनाव मंडलों की व्यवस्था की गई :

(1) कुछ सीमित हितों को जैसे विश्वविद्यालय प्रेसीडेंसी, महानगर निगमों, वाणिज्य मंडलों और बागान मालिकों को अपने प्रतिनिधियों को चुनने की सुविधा थी।

(2) कुछ विस्तृत हितों जैसे भूमिपतियों और व्यावसायिक हितों (वकील, अध्यापक, डॉक्टर) को प्रतिनिधित्व दिया गया।

(3) सांप्रदायिक हितों जैसे मुसलमानों (और कालांतर सिखों को) प्रतिनिधित्व दिया गया।

Scanned by CamScanner

1909 के सुधारों की दूसरी प्रमुख विशेषता यह थी कि प्रांतीय परिषदों में अब तक लागू सरकारी बहुमत के सिद्धांत का परित्याग कर दिया गया। परंतु गवर्नर जनरल की परिषद में अभी भी सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा। यह विश्वास प्रकट किया गया कि प्रांतों में गवर्नर/ले० गवर्नर के निशेषाधिकार (विटो) और केंद्र में प्रांतों के लिए आवश्यक विधेयक पारित करने का अधिकर — गैर-सरकारी बहुमत दिए जाने के जोखिम के विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा थी।

उपर्युक्त सिद्धांतों की सीमाओं के अंतर्गत प्रांतीय परिषदों का अत्यधिक विस्तार किया गया। बड़े प्रांतों, जैसे मद्रास, बंबई, बंगाल और संयुक्त प्रांत की विधान परिषदों की अधिकतम सदस्य संख्या 50 कर दी गई। अपेक्षाकृत छोटे प्रांतों, जैसे पंजाब, बर्मा, पूर्वी बंगाल और आसाम की अधिकतम सीमा 30 कर दी गई। (1912 के बंगाल के पुनर्निर्माण के बाद बिहार और उड़ीसा की 45, सेंट्रल प्रॉविन्सेज की 25 और आसाम के परिषद की अधिकतम सीमा 27 निश्चित की गई) जैसा ऊपर कहा गया है प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत था, परंतु नवंबर 1909 के नियमों के अंतर्गत सदस्यों की नियुक्ति इस प्रकार की गई थी कि मनोनीत किए गए सदस्यों (इसमें सरकारी सदस्य और मनोनीत गैर सरकारी सदस्य दोनों ही सम्मिलित थे) की संख्या प्रांतीय परिषदों के चुने हुए सदस्यों से अधिक थी। केवल बंगाल एक ऐसा अपवाद था जहाँ चुने हुए सदस्यों की संख्या मनोनीत किए हुए सदस्यों से अधिक थी।

विधान परिषदों का संविधान, थोड़ी बहुत विभिन्नता के साथ, गवर्नर जनरल की विधान परिषद की ही भाँति था। गवर्नर जनरल की विधान परिषदों की "अतिरिक्त" सदस्यों की संख्या 60 थी, जिसमें मनोनीत सदस्यों की संख्या 33 और चुने हुए सदस्यों की संख्या 27 थी। मनोनीत किए हुए सदस्यों में 28 सरकारी अधिकारी, 3 गैर-सरकारी सदस्य और 2 विशेषज्ञ थे। जहाँ तक चुने हुए सदस्यों का सवाल था वर्गों और हितों के आधार पर उनका वितरण इस प्रकार किया गया था : (i) सात प्रांतों के जमींदार वर्ग को 7 स्थान, (ii) पाँच प्रांतों के मुसलमानों को पृथक चुनाव प्रणाली से 5 स्थान, (iii) बंगाल और संयुक्त प्रांत के मुसलिम जमींदारों को (एक वर्ष छोड़कर) 1 स्थान, (iv) वाणिज्य मंडलों को 2 स्थान और (v) 12 स्थान आठ प्रांतों के गैर-सरकारी विधान परिषदों के सदस्यों को दिए गए थे। वस्तुतः ये ही 12 स्थान सामान्य और स्वतंत्र चुनाव मंडलों के द्वारा चुने जाने थे। लॉर्ड मॉर्ले ने यह घोषणा की थी कि केंद्रीय विधान परिषद में सरकारी सदस्यों का (प्रांतीय परिषदों के विपरीत) बहुमत बना रहेगा ताकि भारत सरकार बिना किसी हिचक के ब्रिटेन की "सरकार और संसद" के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करती रहे। यहाँ उसने उस सांविधानिक स्थिति को स्पष्ट किया, जिसमें जब तक भारत की सरकार वहाँ की चुनी हुई विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती तब तक वह ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी बनी रहेगी।

1909 के सुधारों की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि चुनाव प्रणाली को, जिसे 1892 में केवल परोक्ष रूप से स्वीकार किया गया था, विधिवत मान्यता दे दी गई। इससे ही उत्पन्न सांविधानिक आवश्यकता यह थी कि चुनावों के लिए इच्छुक उम्मीदवारों और मतदाताओं की योग्यता और अयोग्यता को निश्चित और स्पष्ट किया जाए। उदाहरणार्थ अपराधी और दिवालियेपन का रिकार्ड गंभीर अयोग्यता थी। उसी प्रकार चुने हुए सदस्यों को ब्रिटिश ताज के प्रति स्वामीभक्ति की शपथ लेना अब एक अनिवार्यता बन गई।

Scanned by CamScanner

विभिन्न परिषदों की सदस्य संख्या में वृद्धि के साथ उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई। इसमें संदेह नहीं कि इस अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न परिषदों के सदस्यों के विचार-विमर्श के अधिकारों को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया। 1892 के अधिनियम ने सदस्यों को आम बजट पर आम बहस का ही मौका दिया था। अब उन्हें बजट के अंतिम रूप से पारित करने से पूर्व न केवल बहस करने का बल्कि प्रमुख मुद्दों पर मत देने और विभक्त होने का भी अधिकार मिला। सदस्य बजट पर प्रस्ताव (रिजोल्यूशन) भी प्रस्तुत कर सकते थे। न केवल बजट पर परंतु सार्वजनिक हित के अन्य मुद्दों पर भी प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता था और उस पर मतदान कराया जा सकता था। परंतु ऐसे प्रस्तावों की भाषा संयत होनी चाहिए थी और सरकार के पास वह संस्तुति के ही रूप में भेजी जा सकती थी। सरकार को ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार करने की कोई अनिवार्यता नहीं थी। इसी प्रकार कोई भी प्रस्ताव शासनाध्यक्ष द्वारा बिना कारण बताए अस्वीकार किया जा सकता था। 1892 में सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया था, 1909 में इसको परिपूर्ण किया गया और उनको पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया।

(ग) **1909 के सुधारों का मूल्यांकन :** 1909 का सुधार भारत में दो परस्पर विरोधी राजनीतिक परिस्थितियों के संघर्ष का परिणाम था। एक ओर तो 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद क्रांतिकारी आंदोलनों का प्रारंभ और लोकप्रियता बढ़ रही थी, दूसरी ओर नरमपंथी सांविधानिक सुधारों द्वारा राजनीति पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहते थे। भारत में सरकार जहाँ क्रांतिकारियों को दमन से कुचल देना चाहती थी, वहीं नरमपंथियों के विरुद्ध प्रतितोलन की नीति पालन करके सभी रूढ़िवादी और अनुदार तत्वों की सहायता से अपना आधार पुष्ट करना चाहती थी। इसी नीति का अंग धार्मिक समुदायों को पृथक चुनाव प्रणाली प्रदान करना था, जो न केवल एकताबद्ध राष्ट्रीयता के विकास में बाधक था बल्कि जनतांत्रिक मूल्यों के भी विरुद्ध था।

इस संरचनात्मक सीमा के बावजूद यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि 1861 में मात्र विधेयकों को पारित करने के उद्देश्य से बनाई गई विधान परिषदों का रूप बहुत परिवर्तित हो गया था। सरकार के सभी प्रशासनिक कार्यों की अब आलोचना की जा सकती थी। लॉर्ड मॉर्ले ने संसद में यह अवश्य घोषणा की थी कि उसके सुधारों का उद्देश्य संसदीय व्यवस्था लागू करना नहीं है, परंतु यह अस्वीकारोक्ति इंग्लैंड में विरोधी दल को आश्वासित करने के लिए की गई थी। वस्तुतः मॉर्ले के कथन का सरल उद्देश्य यह बताना था कि भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तक वहाँ की सरकार ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रति जवाबदेह रहेगी। कार्यकारिणी का विधायिका के प्रति अनुत्तरदायी होना ही इन सुधारों का सबसे बड़ा दोष था। सरकार की आलोचना करने, उससे प्रश्न पूछने विभिन्न विषयों पर प्रस्ताव पारित करने का बहुत विस्तृत अधिकार तो परिषद के सदस्यों को मिला — परंतु कार्यकारिणी की उत्तरजीविता पर उसका कोई प्रभाव नहीं था। मांटेगू चेम्सफर्ड रिपोर्ट के अनुसार संसदीय अधिकारों का अधिकतम विकास हुआ परंतु यह उत्तरदायित्व के अभाव में कार्यकारिणी से "घर्षण" की ही स्थिति पैदा कर सका।

Scanned by CamScanner

मॉर्ले-मिंटो सुधारों की दूसरी बड़ी कमी मतदाताओं की संख्या का अत्यंत सीमित होना था। गवर्नर जनरल की विधान परिषद के 27 सदस्यों को चुनने के लिए कुल मतदाताओं की संख्या 4818 थी जिसमें 2406 जमींदार थे और 1901 मुसलमान थे। फिर यह भी सत्य था कि मुसलमानों को आवश्यकता से अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया था। वे अपने पृथक चुनाव मंडलों में तो मत देते ही थे, उन्हें सामान्य मतदाताओं के भी अधिकार प्राप्त थे। यह 'दुहरामत' का अधिकार निश्चय ही पक्षपातपूर्ण था। एक समय ऐसी भी स्थिति आ गई थी कि 32 गैर सरकारी सदस्यों में 11 मुसलमान थे।

इन कमियों के बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि 1909 के सुधार भविष्य में होने वाले सुधारों की अंतिम कड़ी थे। मांटेगू चेम्सफर्ड रिपोर्ट के अनुसार 1861 में प्रारंभ सुधारों की श्रृंखला का यह अंतिम सोपान था। इसके बाद सुधारों के लिए एक ही दिशा संभव थी वह थी कार्यकारिणी को विधान परिषदों के प्रति उत्तरदायी बनाना।

Scanned by CamScanner